जो जागत है सो पावत है
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी महाराज के
सत्संग-प्रवचन

जो जागत है सो पावत है

जगत का सब ऐश्वर्य भोगने को मिल जाय परन्तु अपने आत्मा-परमात्मा का ज्ञान नहीं मिला तो अंत में इस जीवात्मा का सर्वस्व छिन जाता है। जिनके पास आत्मज्ञान नहीं है और दूसरा भले सब कुछ हो परन्तु वह सब नश्वर है । उसका शरीर भी नश्वर है ।

वशिष्ठजी कहते हैः

"किसी को स्वर्ग का ऐश्वर्य मिले और आत्मज्ञान न मिले तो वह आदमी अभागा है । बाहर का ऐश्वर्य मिले चाहे न मिले, अपितु ऐसी कोई कठिनाई हो कि चंडाल के घर की भिक्षा ठीकरे में खाकर जीना पड़े फिर भी जहाँ आत्मज्ञान मिलता हो उसी देश में रहना चाहिए, उसी वातावरण में अपने चित्त को परमात्मा में लगाना चाहिए । आत्मज्ञान में तत्पर मनुष्य ही अपने आपका मित्र है । जो अपना उद्धार करने के रास्ते नहीं चलता वह मनुष्य शरीर में दो पैर वाला पशु माना गया है।"

तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक कहा हैः

जिन्ह हरि कथा सुनी नहीं काना।
श्रवण रंध्र अहि भवन समाना

जिन्होंने सत्संग नहीं सुना, हरिकथा नहीं सुनी उनके कान साँप के बिल के बराबर हैं ।

वशिष्ठजी कहते हैं: "जो ज्ञानवान ऋषि, महर्षि हैं, भले उनके जीवन में कई विघ्न-बाधाएँ भी आती हैं परंतु उनका चित्त सदा अपने आत्म-अभ्यास से सुसज्ज होता है ।"

भगवान राम ने बाल्यकाल से संध्या, प्राणायाम ध्यान आदि किया था, और सोलह साल की उम्र में तीर्थयात्रा करने निकल गये थे । साल भर तीर्थयात्रा करते संसार की स्थिति का गहन अध्ययन करते हुए इस नतीजे पर आये कि बड़े-बड़े महल खण्डहर हो जाते हैं, बड़े-बड़े नाले नदियाँ रुख बदल देती हैं । बस्ती शमशान हो जाती है और शमशान बस्ती में बदल जाता है। यह सब संसार की नश्वरता देखकर भगवान रामजी को वैराग्य हुआ । संसार के विकारी जीवन से, विकारी सुख से उन्हे वैराग्य हुआ । वे वशिष्ठजी मुनि का ज्ञान सुनते थे । ज्ञान सुनते-सुनते उसमें तल्लीन हो जाते थे । रात भर आत्मज्ञान के विचारों में जागते रहते थे । कभी घड़ी भर सोते थे और फिर झट से ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाते थे । श्रीरामचन्द्रजी ने थोड़े ही समय में अपने सदगुरु के वचनों का साक्षात्कार कर लिया ।

विवेकानन्द सात साल तक साधना में लगे रहे । भोजन में किसी पवित्र घर की ही भिक्षा खाते थे । साधन-भजन के दिनों में बहिर्मुख निगुरे लोगों के हाथ का अन्न कभी नहीं लेते थे । पवित्र घर की रोटी भिक्षा में लेते और वह रोटी लाकर रख देते थे । ध्यान करते जब भूख लगती तो रोटी खा लेते थे । कभी तो सात दिन की बासी रोटी हो जाती । उसको चबाते-चबाते मसूढ़ों में खून निकल आता । फिर भी विवेकानन्द आध्यात्मिक मार्ग पर डटे रहे । ऐसा नहीं सोचते थे कि "घर जाकर ताजा रोटी खाकर भजन करेंगे ।" वे जानते थे कि कितनी भी कठिनाई

आ जाये फिर भी आत्मज्ञान पाना ज़रुरी है । गुरु के वचनों का साक्षात्कार करना ज़रूरी है । जो बुद्धिमान ऐसा समझता है उसको प्रत्येक मिनट का सदुपयोग करने की रुचि होती है । उसे कहना नहीं पड़ता कि ध्यान करो, नियम करो, सुबह जल्दी उठकर संध्या में बैठो । जो अपनी ज़िन्दगी की कदर करता है वह तत्पर हो जाता है । जिसका मन मूर्ख है और वह खुद मन का गुलाम है, वह तो चाबुक खाने के बाद थोड़ा चलेगा और फिर चलना छोड़ देगा ।

मूर्ख हृदय न चेत

यद्यपि गुरु मिलहीं बिरंचि सम।

भले ब्रह्माजी गुरु मिल जायें फिर भी मूर्ख आदमी सावधान नहीं रहता । बुद्धिमान आदमी गुरु की युक्ति पर डट जाता है । जैसे, एकलव्य गुरु की मूर्ति बनाकर अभ्यास में लग जाता था । कोई गलती होती थी तो अपना कान पकड़ता था । बाँये हाथ से कान पकड़ता था और दायाँ हाथ गुरु का मानकर चाँटा मारता था । ऐसा करते करते गुरु की मूर्ति के आगे धनुर्विद्या सीखा और उसमें श्रेष्ठता प्राप्त की ।

जो गुरु वचन लग जाते हैं उन्हे हजार विघ्न-बाधाएँ भी आयें फिर भी आध्यात्मिक रास्ता नहीं छोड़ते । सबसे ऊँचे पद का साक्षात्कार कर ही लेते हैं । ऐसे आत्मवेत्ता अदभुत होते हैं ।

भोजन में खूब हरी मिर्च खाने वाले का वीर्य कमजोर हो जाता है । वीर्य कमजोर होगा तो मन कमजोर हो जायेगा । मन कमजोर होगा तो बुद्धि कमजोर होगी और फिर उस बुद्धि को कोई भी घसीट ले जाएगा । उसके साक्षात्कार का रास्ता लम्बा हो जाएगा । जो भगवान के भक्त होते हैं उनके दिव्य परमाणु होते हैं । दिव्य परमाणु वाले को हलके परमाणु वाले के संपर्क से अपने को बचाना चाहिए । ईश्वर साक्षात्कार के रास्ते जो विघ्न आते हैं उनसे जो भी अपने को बचाता है वह जल्दी तर जाता है, आत्मानुभव कर लेता है ।

जिसको सुविचार उपजता है वह तंदरुस्ती के लिए भोजन करता है । तन ढँकने के लिए कपड़ा पहनता है । खा-पीकर, कपड़ा पहनकर मजा लेने का उसका भाव चला जाता है । 'जरा मजा ले लूँ' यह बेवकूफी उसकी चली जाती है । कुत्ता रोटी का टुकड़ा देखता है, उसके मुँह में पानी आ जाता है । मगर उत्तम साधक के आगे छप्पन भोग रख दो फिर भी उसके मुँह में पानी नहीं आयेगा क्योंकि बुद्धि विकसित हो गई है । वह अब हलके केन्द्रों में नहीं है, थोड़ा ऊपर उठ गया है । अगर ऊपर उठ गया है तब तक तो साधक है परन्तु स्वादिष्ट भोजन देखकर दो ग्रास ज्यादा खा लेता है या स्वाद के लिए ही भोजन करता है तो अब तक साधकपना नहीं आया ।

क्या खाना, कैसे खाना, कब खाना, क्या करना, कैसे करना, क्या बोलना, कैसे बोलना यह सब साधकपन आने से अपने आप ही पता चलने लगता है । उसका अंतःकरण इतना मधुर पवित्र हो जाता है कि वह परायों को अपना बना लेता है । यह पहली भूमिका शुभेच्छा है । शुभेच्छा यह है कि "कब मैं परमात्मा को पाऊँ, ईश्वर गुरु को रिझाऊँ? हृदय में ही बैठा है परमात्मदेव, उसका साक्षात्कार कब हो?"

स्वामी रामतीर्थ प्रोफेसर की नौकरी करते थे । अपनी आय के पैसे से खाद्य पदार्थ, कापियाँ, फल, पुस्तकें आदि सामान लेकर गरीब, अनाथ, ज़रूरतमंद बच्चों को बाँट देते थे । पत्नी ने कहाः "कमाते हो तो बच्चों का जरा ख्याल तो करो ।"

स्वामी रामतीर्थ ने कहाः "बच्चों के लिए ही तो कमाता हूँ ।"

पत्नी ने कहाः "यह दो बेटे हैं उनका तो ख्याल करो ।"

रामतीर्थ ने कहाः "यह ही दो बेटे राम के नहीं, सब बेटे राम के हैं । इनको भी लाईन में लगा दो ।"

लोग अपनी रोटी के लिए छल-कपट करके भी पैसे इकट्ठे करते हैं । शुभविचार जब आयेगा तब वब छल कपट का पैसा अच्छा नहीं लगेगा । वह तो अपना भी दूसरों के हित में लगा देगा । वह क्या छल-कपट करेगा ।

स्वामी रामतीर्थ ने अपने बेटों के लिए कोई खास चिन्ता नहीं की थी । दूसरे लोग समझाते थेः "तुम प्रोफेसर हो, कमाते हो । बच्चों के लिए रखो, इन बेचारों की जिन्दगी का भी कुछ ख्याल करो । इन बच्चों की जिन्दगी की चिंता तो जिसने बच्चे पैदा किये हैं, बच्चों को जन्म दिया है उसे करना ही चाहिए ।"

स्वामी रामतीर्थ कहतेः "जिसको इनका ख्याल करना चाहिए वह कर ही रहा है । राम की सत्ता से इनका जन्म हुआ, राम ने ही जन्म दिया और राम में ही वे जी रहे हैं । राम कोई मर थोड़े ही गया है ।"

दूसरे प्रोफेसरों ने अपने बेटों के संग्रह तो किया मगर वे बेटे कोई क्लर्क हुए, तो कोई मास्टर हुए । रामतीर्थ ने अपने एक ही शरीर से उत्पन्न बेटों के लिए ध्यान नहीं दिया, वे दो बेटों में एक न्यायाधीश हुआ और दूसरा कलेक्टर हुआ ।

मोह-माया, धोखा-धड़ी, छल कपट करके जो अपने बच्चों के लिए धनसंग्रह करते हैं उनके व ही बच्चे उनके मुँह पर थूक देते हैं ।

नानक जी कहते हैं-

संगी साथी चले गये सारे कोई न निभियो साथ।
कह नानक इह विपत में टेक एक रघुनाथ।।

जब भगवान के सिवाय सब बेकार लगे तो समझो कि वह पहली भूमिका पर पहुँचा है । उसके लिए विघ्न-बाधाएँ साधन बन जाएँगी । विघ्न-बाधाएँ जीवन का संगीत है । विघ्न-बाधाएँ नहीं आयें तो संगीत छिड़ेगा नहीं ।

भौंरी कीड़े को उठाकर अपने बिल में रखती है । एक डंक मारती है, वह कीड़ा छटपटाता है । उसके शरीर से पसीने जैसा कुछ प्रवाह निकलता है । फिर भौंरी जब दूसरा डंक मारती है तब कीड़ा तेजी से छटपटाता है और वह पसीना कड़ा हो जाता है, जाला बन जाता है । जब

तीसरा डंक मारती है तो कीड़ा खूब छटपटाता है, बहुत दुःखी होता है मगर उस डंक के कारण पसीने से जो जाला बना है उसी में से पंख फूट निकलते हैं और वह उड़ान भरता है ।

वैज्ञानिकों ने कीड़े में से मकड़ी बनने की इस प्रक्रिया को देखा । भौंरी के द्वारा तीसरे डंक सहने की तीव्र पीड़ा से उन कीड़ों को बचाने के लिए वैज्ञानिकों ने एक बारीक कैंची बनाई और तीसरे डंक से कीड़ा छटपटाकर जाला काटे उसकी अपेक्षा उन्होंने कैंची से वह जाला काट दिया । कीड़े को राहत मिली, पीड़ा तो नहीं हुई, मगर फिर उसके पंख नहीं फूटे । उड़ान भरने की योग्यता उसमें नहीं आयी ।

ऐसे ही परमात्मा जब अपने साधक को अपनी दिव्य अनुभूति में उड़ान भरवाते हैं तब उसको चारों तरफ से विघ्न-बाधाएँ देते हैं ताकि उसका विचारबल, मनोबल, समझशक्ति एवं आत्मशक्ति बढ़ जाये । मीरा के लिए परमात्मा ने राणा को तैयार कर दिया । नरसिंह मेहता का भाई ही उनका विरोध करता था, साथ में पूरी नगरी जुड़ गयी । शबरी भीलनी हो, चाहे संत कबीर हो, चाहे एकनाथ जी हों या संत तुकाराम हों, कोई भी हो, लोग ऐसे भक्तों के लिए एक प्रकार का जाला बना लेते हैं । एकनाथ जी महाराज के खिलाफ हिन्दू और मुसलमान दोनों ने मिलकर एक चांडाल चौकड़ी बनायी थी ।

जैसे कीड़े के लिए तीसरा डंक पंख फूट निकलने के लिए होता है ऐसे ही प्रकृति की ओर से यह सारा खिलवाड़ साधक के उत्थान के लिए होता है । जिन्हे सत्संग का सहारा नहीं है, पहली दूसरी भूमिका में दृढ़ता नहीं है वे हिल जाते हैं ।

बुद्ध के मन में एक बार आया कि यहाँ तो कोई पहचानता भी नहीं, खाने का भी ठिकाना नहीं है, लोग मुझ पर थूकते हैं, हालाँकि मैं उन्हें कुछ कहता भी नहीं । यह भी कोई ज़िन्दगी है ! चलो, वापस घर चलें । उस समय वे सिद्धार्थ थे । सत्संग का सहारा नहीं था । पहली भूमिका में दृढ़ता चाहिए । बचपन का वैराग्य हो तो ठीक है मगर बुढापे में वैराग्य जगा है या फिर भी भोग भोगने के बाद, बच्चों को जन्म देने के बाद पहली भूमिका मिली हो तो जरा कमजोर है । बुद्ध के मन में आया कि चलो घर जायें । उन्हीं विचारों में खोये से बैठे थे । इतने में देखते हैं कि सामने पेड़ पर एक कीड़ा चड़ रहा है । हवा का झोंका आया और गिर पड़ा । फिर उसने चढ़ना शुरु किया । हवा का दूसरा झोंका आया और फिर गिर पड़ा । ऐसे वह कीड़ा सात बार गिरा और चढ़ा । आखिर वह आठवीं बार में चढ़ गया । सिद्धार्थ उसको ध्यान से देख रहे थे । उन्होंने सोचा कि यह कोई झूठी घटना नहीं है । यह तो संदेश है । एक साधारण कीड़ा अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है और मैं इन्सान होकर पीछे हट जाऊँ?

सिद्धार्थ की पहली भूमिका थी । अपने आप संस्कार जग गये । सिद्धार्थ ने निश्चय कर लियाः "कार्यं साधयामि व देहं पातयामि । या तो कार्य साध लूँगा या मर जाऊँगा । महल में भी एक दिन मर ही जाना है । साधना करते-करते भी मर जाऊँगा तो हर्ज नहीं । ऐसा सोचकर पक्की गाँठ बाँध ली और चल पड़े । सात साल के अन्दर ही उन्हें परम शांति मिल गयी ।

जब आदमी के शुभ विचार जगते हैं तब स्नान, दान, सेवा, स्मरण, सत्संग परहित उसे अच्छे लगते हैं । जिसे पहली भूमिका प्राप्त नहीं हुई उसे इन सब कार्यों के लिए फुर्सत ही नहीं मिलेगी । वहाँ से वह पलायन हो जायेगा । उसे वह सब अच्छा नहीं लगेगा । वाह-वाही पाने, यश कमाने को तो आगे आ जायेगा पर फिर खिसक जायेगा । ऐसे लोग फिर पशु, पक्षी, कीट की निम्न योनियों में जाते हैं ।

दूसरी भूमिका होती है शुभेच्छा । 'ऐसे दिन कब आयेंगे कि परमात्मा मिले, ऐसे दिन कब आयेंगे कि देह से देहातीत तत्त्व का साक्षात्कार हो जाये? अफसर, साहब, सेठ, साहूकार बन गये मगर आखिर क्या?' ऐसा विचार उसे आता रहता है ।

यह दूसरी भूमिका जिसे प्राप्त हो गई वह घर में भी है तो घर वाले उसे दबा नहीं सकेंगे । सत्संग और सत्कर्म में रूचि रहेगी । भोग-वासना फीकी पड़ जायेगी । मगर फिर रोकने वाले आ जायेंगे । उसे महसूस होगा कि ईश्वर के रास्ते में जाने में बहुत सारे फायदे हैं । विघ्न करने वाले साधक के आगे आखिर हार मान जायेंगे । ईश्वर का दर्शन तो इतने में नहीं होगा मगर जो संसार कोसता था वह अनुकूल होने लगेगा ।

उसके बाद तीसरी भूमिका आयेगी, उसमें सत्संग के वचन बड़े मीठे लगेंगे । उन्हीं वचनों का निदिध्यासन करेगा, ध्यान करेगा, श्वासोच्छोवास को देखेगा । 'मैं आत्मा हूँ, चैतन्य हूँ' ऐसा चिन्तन-ध्यान करेगा । गुरुदेव का ध्यान करेगा तो गुरुदेव दिखने लगेंगे । गुरुदेव से मानसिक बातचीत भी होगी, प्रसन्नता और आनंद आने लगेगा । संसार का आकर्षण बिल्कुल कम हो जायेगा । फिर भी कभी-कभी संसार लुभाकर गिरा देगा । फिर से उठ खड़ा होगा । फिर से गिरायेगा, फिर खड़ा होगा । परमात्मा का रस भी मिलता रहेगा और संसार का रस कभी-कभी खींचता रहेगा । ऐसा करते-करते चौथी भूमिका आ जाती है तब साक्षात्कार हो जाता है फिर संसार का आकर्षण नहीं रहता । जब स्वप्न में से उठे तो फिर स्वप्न की चीजों का आकर्षण खत्म हो गया । चाहे वे चीज़ें अच्छी थीं या बुरी थीं । चाहे दुःख मिला, चाहे सुख मिला, स्वप्न की चीज़ें साथ में लेकर कोई भी आदमी जग नहीं सकता । उन्हें स्वप्न में ही छोड़ देता है । ऐसे ही जगत की सत्यता साथ में लेकर साक्षात्कार नहीं होता । चौथी भूमिका में जगत का मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है । वृत्ति व्यापक हो जाती है । वह महापुरुष होते हुए भी अनेक ब्रह्माण्डों में फैल जाता है । उसको यह अनुभव होता है कि सूरज मुझमें है, चन्द्र मुझमें है, नक्षत्र मुझमें हैं । यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश के पद भी मुझमें हैं । ऐसा उन महापुरुषों का अनुभव होता है । उनको कहा जाता है ब्रह्मवेत्ता । वे ब्रह्मज्ञानी बन जाते हैं ।

ब्रह्मज्ञानी को खोजे महेश्वर ।
ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर ।
ब्रह्मज्ञानी मुगत जुगत का दाता ।
ब्रह्मज्ञानी पूरण पुरुष विधाता ।

ब्रह्मज्ञानी का कथ्या न जाई आधा आखर ।

नानक! ब्रह्मज्ञानी सबका ठाकुर ।

चौथी भूमिका में वह सबका ठाकुर हो जाता है । फिर उसके लिए कोई देवी-देवता पूजनीय नहीं रहते, नरक में ले जाने वाले यम नहीं रहते । उसके लिए सब अपने अंग हो जाते हैं । जैसे, रोमकूप आपको कभी चुभता? आपका पैर, अंगूठा, ऊँगली आपको चोट पहुँचाती है? नहीं । सब आप ही हो । ऐसे ही वह ब्रह्मज्ञानी व्यापक हो जाता है । ब्रह्म-साक्षात्कार करके ब्रह्ममय हो जाता है । फिर उसके लिए कोई रीति-रिवाज, कोई मजहब, कोई पंथ, कोई भगवान या देवी-देवता शेष नहीं रहते । वह जो बोलता है वह शास्त्र बन जाता है । संत तुकाराम ने जो अभंग गाये थे वे महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी में, एम.ए. के विद्यार्थियों के पाठ्यपुस्तक में हैं । संत तुकाराम अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे मगर नरेन्द्र जैसे, केशवचन्द्र सेन जैसे, कई विद्वानों को मार्गदर्शन देने में समर्थ हो गये । व्यक्ति जब चौथी भूमिका में पहुँच जाता है तब उसकी वाणी वेदवाणी हो जाती है । संत तुकाराम कहते हैं- "अमी सांगतो वेद सांगते । हम बोलते हैं वह वेद बोलते हैं ।"

ब्रह्मज्ञान हो गया फिर ब्रह्मज्ञानी शास्त्र का आधार लेकर बोलें कि ऐसे ही बोलें, उनकी वाणी वेदवाणी हो जाती है । वे जिस धरती पर पैर रखते हैं वह धरती काशी हो जाती है । वे जिस जल को निहारते हैं वह जल उनके लिए गंगाजल हो जाता है । जिस वस्तु को छूते हैं वह वस्तु प्रसाद हो जाती है और जो अक्षर बोलते हैं वे अक्षर मंत्र हो जाते हैं । वे महापुरुष मात्र 'ढें...ढें... करो' ऐसा कह दें और करने वाला श्रद्धा से करता रहे, तो उसको अवश्य लाभ हो जाता है । हालांकि ढें... ढें... कोई मंत्र नहीं है मगर उन महापुरुष ने कहा है और जपने वाले को पक्का विश्वास है कि मुझे फायदा होगा तो उसे फायदा होकर ही रहता है ।

मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम्.....

जिनका वचन मंत्र हो जाता है उन्हें संसार की कौन-सी चीज़ की जरूरत पड़ेगी? उन्हें कौन-सी चीज़ अप्राप्य रहेगी? 'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति....' ईश्वर के ध्यान से भी ज़्यादा महापुरुष के ध्यान से हमारा कल्याण होता है । जब तक ऐसे जीवित महापुरुष नहीं मिलते तब तक ईश्वर की मूर्ति का ध्यान किया जाता है । जब ऐसे महापुरुष मिल गये तो फिर उन्हीं का ध्यान करना चाहिए ।

मैंने पहले श्री कृष्ण का, माँ काली का, भगवान झूलेलाल का, भगवान शिव का ध्यान करते हुए न जाने कितने पापड़ बेले । थोड़ा-थोड़ा फायदा हुआ मगर सब देवी-देवता एक में दिखें ऐसे गुरुजी जब मिल गये तो मेरा परम प्राप्तव्य मुझे शीघ्र प्राप्त हो गया । मेरे डीसा के निवास में जहाँ मैं सात साल रहा था वहाँ, मेरी कुटिया में एक मात्र गुरुदेव का ही फोटो रहता था । अभी भी वही है और किसी देवी देवता का चित्र नहीं है । गुरु के ध्यान में सब ध्यानों का फल आ जाता है ।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः ।

'विचारसागर' में यह बात आती है । वेदान्त का एक बड़ा ऊँचा ग्रन्थ है 'विचारसागर'। उसमें कहा है कि पहली, दूसरी या तीसरी भूमिका में जिसको भी ब्रह्मज्ञानी गुरु मिल जायें वह ब्रह्मज्ञानी गुरु का ध्यान करे, उनके वचन सुने । उसमें तो यहाँ तक कह दिया है किः

ईश ते अधिक गुरु में धारे भक्ति सुजान ।
बिव गुरुकृपा प्रवीनहुँ लहे न आतम ज्ञान ।।

ईश्वर से भी ज़्यादा गुरु में प्रेम होना चाहिए । फिर सवाल उठाया गया किः "ईश्वर में प्रेम करने से भी अधिक गुरु में प्रेम करना चाहिए । इससे क्या लाभ होगा?

उत्तर में कहाः 'ईश्वर में प्रेम करके सेवा पूजा करोगो तो हृदय शुद्ध होगा और जीवित महापुरुष में प्रीति करोगे, सेवा-पूजा, ध्यान करोगे तो हृदय तो शुद्ध होगा ही, वे तुम्हारे में कौन सी कमी है वह बताकर ताड़न करके वह गलती निकाल देंगे । मूर्ति तो गलती नहीं निकालेगी । मूर्ति से तुम्हारा भाव शुद्ध होगा परन्तु तुम्हारी क्रिया और ज्ञान की शुद्धि के लिए, अनुमति के लिए मूर्ति क्या करेगी?

भावशुद्धि के लिए ध्यान चिन्तन करते हैं । गुरु में जब प्रीति हो जायेगी तो गुरु हमें अपना मानेंगे, हम गुरु को अपना मानेंगे । गुरुजी हमारी गलती दिखायेंगे तो हम आसानी से स्वीकार करके गलती को निकालेंगे । गुरुजी के सामने नहीं पड़ेंगे, क्योंकि अपनत्व है । शिष्य विचार करेगा कि कौन गलती दिखा रहा है? मेरे गुरुदेव दिखा रहे हैं । तो फिर मेरे हित में ही है । फिर प्रतिशोध की भावना नहीं होगी । दूसरा कोई डाँट दे, अपमान करे तो प्रतिशोध की भावना उठेगी और गुरुजी डाँट दें तो खुशी होगी कि गुरुजी मुझे अपना समझते हैं, मेरी घड़ाई करते हैं, कितने दयालू हैं !

'विचारसागर' कहता हैः

ईश ते अधिक गुरु में धारे भक्ति सुजान ।

ईश्वर का भजन करने से केवल भाव शुद्ध होंगे, हृदय शुद्ध होगा गुरुदेव का भजन करने से क्रिया और ज्ञान शुद्ध होगा । गुरु का दैवी कार्य करना भी गुरुदेव का भजन है । गुरु का चिन्तन करना भी गुरु का भजन है । जो काम करने से गुरु प्रसन्न हों वह सारा काम भजन हो जाता है । हनुमानजी ने रावण की लंका जलाई फिर भी वह भजन हो गया । ताड़का वध भी राम जी का भजन हो गया । राक्षसों का संहार करना भी राम जी का विश्वामित्र के प्रति भजन हो गया । क्रिया तुम कैसी कर रहे हो, अच्छी या बुरी, यह नहीं परन्तु क्रिया करने के पीछे तुम्हारा भाव क्या है यह महत्व रखता है । जैसे माँ बच्चे को कभी कटु दवा पिलाती है कभी मिठाई खिलाती है मगर उसका भाव तो बच्चे की तन्दरुस्ती का है । ऐसे ही गुरु में हमारा भाव अगर शुद्ध है तो कभी कुछ करना पड़े तो कोई दोष नहीं लगता । कभी किसी से स्नेह से चलना हो या रोष करके

चलना पड़े फिर भी भगवान के, गुरु के मार्ग पर चलते हैं, गुरुकार्य में लगे हैं तो वह भजन, पूजा, साधना हो जाती है । उस समय तुम्हारी क्रिया के पीछे जो भाव है उसका मूल्य है । जब तक ऐसा भाव नहीं जगा तब तक क्रिया मुख्य रहती है । भाव जग गया तब क्रिया गौण हो जाती है ।

पहली भूमिका में तुम्हें विषय, विकार, विलास बहुत कम अच्छे लगते हैं । चित्त में कुछ खोज बनी रहती है । दूसरी भूमिका में खोज करके तुम सत्संग में जाओगे । लोगों से तुम्हारा शुभ व्यवहार होने लगेगा । पहले संसार के ऐश-आराम में जो रुचि थी वह अब गायब हो जायेगी ।

तीसरी भूमिका में आनन्द आने लगेगा । ध्यान जमने लगेगा । समाधि का सुख प्रगाढ़ होने लगेगा । ब्रह्माकार वृत्ति की थोड़ी झलक आयेगी, मगर सत्संग, साधन, भजन छोड़ दोगे तो फिर नीचे आ जाओगे ।

चौथी भूमिका में सिद्ध बना हुआ साधक नीचे नहीं आता, गिरता नहीं । जैसे पदार्थ गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के पार चला गया तो फिर वापस नहीं गिरेगा । मगर गुरुत्वाकर्षण के अन्दर रहा, दूसरों की अपेक्षा वह ऊँचे तो है, फिर भी गिरने का डर है । वैसे ही जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं होता तब तक संसार के कीचड़ में गिरने का डर रहता है । आत्म-साक्षात्कार होने के बाद तो संसार के कीचड़ में होते हुए भी वह निर्लेप है । दही बिलोते हैं तब मक्खन निकलने से पहले झाग दिखती है । अगर गर्मी ज़्यादा है तो थोड़ा ठंडा पानी डालना पड़ता है, ठंड ज्यादा हो तो थोड़ा गर्म पानी मिलाना पड़ता है और मक्खन निकाल लेना पड़ता है । अगर छोड़ देंगे तो फिर मक्खन हाथ नहीं आयेगा । जब मक्खन निकालकर उसका पिण्ड बना लिया फिर उसे छाछ में रखो तो कोई चिन्ता नहीं । पहले एक बार उसे दही में से निकाल लेना पड़ता है । ऐसे ही संसार से न्यारे होकर एक बार अपने हृदय में परमात्म-साक्षात्कार का अनुभव कर लेना पड़ता है । फिर भले संसार में रहो, कोई बात नहीं । छाछ में मक्खन तैरता रहता है । पहले तो छाछ में मक्खन दिखता भी नहीं था, अब डूबता ही नहीं है । दोनों अवस्था में मक्खन है उसी छाछ में ही |

रहत माया में फिरत उदासी ।
कहत कबीर मैं उसकी दासी ।।
ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेपा ।
जैसे जल में कमल अलेपा ।।

फिर उन ब्रह्मज्ञानी के शरीर से दिव्य परमाणु निकलते हैं । उनकी निगाहों से दिव्य रश्मियाँ निकलती हैं । विचारों से भी दिव्यता निःसृत होती है । मंद और म्लान जगत को वह कांति और तेजस्विता प्रदान करता है । जैसे चन्द्रमा स्वाभाविक शीतल है, औषधि को पुष्ट करता है वैसे ही वे पुरुष स्वाभाविक ही समाज की आध्यात्मिकता पुष्ट करते हैं । ऐसे पुरुष बार-बार

आते हैं इसीलिए संस्कृति टिकी रहती है । धर्म टिका हुआ है । नहीं तो धर्म के नाम पर दुकानदारी बढ़ जाती है । मजहब के नाम पर मारकाट बढ़ जाती है ।

चौथी भूमिका प्राप्त हो जाये तो साक्षात्कार तो हो गया, परन्तु उसके बाद एकान्त में रहते हैं, अपनी मस्ती में ही रहते हैं तो पाँचवीं भूमिका हो जाती है । वह जीवन्मुक्त पुरुष हो जाता है । चौथी भूमिका वाले को कभी-कभी विक्षेप होगा मगर अपने आप सँभल जायेगा । पाँचवी भूमिका वाला विक्षेप करने वाले लाखों लोगों के बीच रहे फिर भी विक्षेप उसके अंदर तक नहीं पहुँचता, कभी हलका सा, बहते पानी में लकीर जैसा लगे परन्तु तुरन्त ज्ञान के बल से विक्षेप हट जायेगा ।

छठी भूमिका में तो जगत का पता भी नहीं चलेगा । कोई मुँह में कौर दे-देकर खिलावे ऐसी अवस्था हो जाती है । ज्यों-ज्यों ज्ञान में जायेगा त्यों-त्यों लोगों की, जगत की पहचान भूलता जायेगा । पाँचवी भूमिका में भी थोड़ी-थोड़ी विस्मृति होती है मगर छठी में विस्मृति गहरी हो जाती है । दस दिन पहले कुछ कहा और आज वह सब भूल गया ।

एक तो होती है विस्मृति और तत्त्वज्ञान की इतनी गहराई होती है कि बोलते समय भी उस वचन की सत्यता नहीं है, देखते समय भी सामने वाले व्यक्ति के नामरूप की सत्यता नहीं है । उसके ज्ञान में नाम, रूप का हिस्सा कम हो जाता है । उस अवस्था में और भी ज्यादा डूबा रहे तो उसे जब कोई कहे कि 'यह रोटी है, मुँह खोलो' तब वह मुँह खोलेगा । ऐसी अवस्था भी आ जाती है ।

घाटवाले बाबा का कहना हैः "भगवान श्रीकृष्ण की चौथी भूमिका थी । इसलिए उनको बाहर का ज्ञान भी था, ब्रह्मज्ञान भी था । रामजी की चौथी भूमिका थी । जड़भरत की पाँचवीं भूमिका थी । जब कभी, जहाँ कहीं चल दिया । पता भी नहीं चलता था ऋषभदेव की छठी भूमिका हो गई । वे वन में गये । वन में आग लगी है तो भी पता नहीं । कौन बताये? उसी आग में वे चले गये । शरीर शांत हो गया । वे स्वयं ब्रह्म में मिल गये ।

पहली भूमिकाः यूँ मान लो कि दूर से दरिया की ठंडी हवाएँ आती प्रतीत हो रही है ।

दूसरी भूमिकाः आप दरिया के किनारे पहुँचे हैं ।

तीसरी भूमिकाः आपके पैरों को दरिया का पानी छू रहा है ।

चौथी भूमिकाः आप कमर तक दरिया में पहुँच गये हैं । अब गर्म हवा आप पर प्रभाव नहीं डालेगी । शरीर को भी पानी छू रहा है आसपास भी ठंडी लहरें उभर रही हैं ।

पाँचवीं भूमिकाः छाती तक, गले तक आप दरिया में आ गये ।

छठी भूमिकाः जल आपकी आँखों को छू रहा है, बाहर का जगत दिखता नहीं । पलकों तक पानी आ गया । कोशिश करने पर बाहर का जगत दिखता है ।

सातवीं भूमिकाः आप पूरे दरिया में डूब गये ।

ऐसी अवस्था में कभी-कभी हजारों, लाखों वर्षों में कोई महापुरुष की होती है । कई वर्षों के बाद चौथी भूमिका वाले ब्रह्मज्ञानी पुरुष पैदा होते हैं । करोड़ों में से कोई ऐसा चौथी भूमिका तक पहुँचा हुआ वीर मिलता है । कोई उन्हें महावीर कह देते हैं । कोई उन्हें भगवान कह देते हैं । कोई उन्हें ब्रह्म कहते हैं, कोई अवतारी कहते हैं, कोई तारणहार कहते हैं । उनका कभी कबीर नाम पड़ा, कभी रमण नाम पड़ा, कभी रामतीर्थ नाम पड़ा, मगर जो भगवान कृष्ण हैं वही कबीर हैं । जो शंकराचार्य हैं, राजा जनक, भगवान बुद्ध हैं वही कबीर हैं । ज्ञान में सबकी एकता होती है । चौथी भूमिका में आत्म-साक्षात्कार हो जाता है । फिर उसके विशेष आनंद में पाँचवीं-छठी भूमिका में रहें या लोकसंपर्क में अपना समय लगायें उनकी मौज है । जो चार-साढ़े चार भूमिका में रहते हैं, उनके द्वारा लोककल्याण के काम बहुत ज्यादा होते हैं । इसलिए वे लोग प्रसिद्ध होते हैं और जो पाँचवीं, छठी भूमिका में चले जाते हैं वे प्रसिद्ध नहीं होते । मुक्ति सबकी एक जैसी होती है । चौथी भूमिका के बाद ही पाँचवी में पहुँच सकता है । ऐसा नहीं कि कोई आलसी है, बुद्धु है और उसे हम समझ लें कि छठी भूमिका में है । दिखने में तो पागल और छठी भूमिका वाला दोनों एक जैसे लगेंगे । मगर पागल और इसमें फर्क है । पागल के हृदय में एकदम अँधेरा है इसलिए पागल है और ज्ञानी अंदर से पूरी ऊँचाई प्राप्त है इसलिए उन्हें दुनिया का स्मरण नहीं । जैसे कार्बन में ही हीरा बनता है । कच्ची अवस्था में कोयला है और ऊँची अवस्था में हीरा है । वैसे ही ज्ञानी ऊँची अवस्था में पहुँचे हुए होते हैं । अनुभूति के दूसरे छोर पर होते हैं ।

ब्रह्मज्ञान सुनने से जो पुण्य होता है वह चान्द्रायण व्रत करने से नहीं होता । ब्रह्मज्ञानी के दर्शन करने से जो शांति और आनंद मिलता है, पुण्य होता है वह गंगा स्नान से, तीर्थ, व्रत, उपवास से नहीं होता । इसलिए जब तक ब्रह्मज्ञानी महापुरुष नहीं मिलते तब तक तीर्थ करो, व्रत करो, उपवास करो, परंतु जब ब्रह्मज्ञानी महापुरुष मिल गये तो व्यवहार में से और तीर्थ-व्रतों में से भी समय निकाल कर उन महापुरुषों के दैवी कार्य में लग जाओ क्योंकि वह हजार गुना ज़्यादा फलदायी होता है ।

कबीरजी ने कहा हैः

तीर्थ नहाये एक फल संत मिले फल चार ।

तीर्थ नहायेंगे तो धर्म होगा । एक पुरुषार्थ सिद्ध होगा । संत के सान्निध्य से, सत्संग से साधक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों के द्वार पर पहुँच जायेगा । सत्गुरु मिलेंगे तो वे द्वार खुल जायेंगे, उनमें प्रवेश हो जायेगा ।

सत्गुरु मिले अनंत फल कहे कबीर विचार ।

'न अंतः इति अनंतः ।' जिस फल का अंत न हो ऐसा अनंत फल, ब्रह्मरस जगाने वाला फल मिल जायेगा । वही ब्रह्मज्ञानी जब हमारे सदगुरु होते हैं तो उनके साथ अपना तादात्मय हो जाता है । उनसे संबंध जुड़ जाता है । मंत्र के द्वारा, दृष्टि के द्वारा अपने अंतःकरण में उनकी आँशिक किरण आ जाती है । फिर वह शिष्य चाहे कहीं भी रहे, मगर जब सदगुरु का स्मरण

करेगा तब उसका हृदय थोड़ा गदगद हो जायेगा । जो सदगुरु से जुड़ गया है उसे अनंत फल मिलता है ।

वे सदगुरु कैसे होते हैं?

सतगुरु मेरा सूरमा करे शब्द की चोट ।

उपदेशरूपी ऐसी चोट भीतर करेंगे कि हमारे अज्ञान के संस्कार हटते जायेंगे, ज्ञान बढ़ता जाएगा ।

मारे गोला प्रेम का हरे भरम की कोट ।

चोट तो करते हैं मगर भीतर से उनके हृदय में हमारे लिए प्रेम, स्नेह होता है और वे हमारा कल्याण चाहते हैं । हमें भरम है कि "मैं अमुक का लड़का हूँ, अमुक का पति हूँ ।' यह सब भरम है । यह तुम्हारा शरीर तुम नहीं हो, तुम तो अजर अमर आत्मा हो, ऐसा ज्ञान देकर गुरु उसमें स्थिति करवाते हैं ।

कबीरा वे नर अंध हैं
हरि को कहते और, गुरु को कहते और ।

वे हृदय के अंधे हैं जो भगवान को और गुरु को अलग मानते हैं ।

हरि रूठे ठौर है गुरु रूठे नहीं ठौर ।।

भगवान रूठ जायें तो गुरु संभाल लेंगे, भगवान को राजी होना पड़ेगा । मगर गुरु रूठ गये तो भगवान कहेंगेः "यह केस हम नहीं ले सकते क्योंकि हम जब अवतार धारण करते हैं तब भी गुरु की शरण जाते हैं । तूने गुरु का अनादर किया और मेरे पास आया, मेरे पास तेरी जगह नहीं है ।"

सदगुरु जिसको मिल जाते हैं और जो उन गुरु को पहचान कर उनके वचन को पकड़ लेता है उसके तो हजारों जन्मों के कर्म एक ही जन्म में पूरे हो जाते हैं । शिष्य ईमानदारी से चलता है तो जितना चल पाये उतना चलता रहे । ऐसा नहीं कि बैठा रहे, चले ही नहीं और मानता रहे कि गुरु उठा लेंगे । नहीं ! खुद चलो । गुरु देखेंगे कि इससे जितना ईमानदारी से चला गया उतना चला है, तो बाकी का गुरु अपना धक्का लगाकर उसे पहुँचा देते हैं ।

आप तत्पर होकर चलो, वे धक्का लगायेंगे । आप पालथी मारकर बैठोगे तो कुछ नहीं होगा । बेटा चलना सीखना चाहे तो बाप ऊँगली देगा किन्तु पैर तो बेटे को ही चलाने पड़ेंगे । गुरु बताते हैं उस ढंग से शिष्य चलता है तो फिर बाकी का काम गुरु संभाल लेते हैं ।

गुरु शिष्य के बीच की बात भगवान को भी नहीं बतायी जाती । गुरु शिष्य का संबंध बड़ा सूक्ष्म होता है ।

तुलसीदास जी ने कहा हैः

गुरु बिन भवनिधि तरहिं न कोई ।
चाहे बिरंचि शंकर सम होई ।।

शिवजी जैसा प्रलय करने का सामर्थ्य हो और ब्रह्माजी जैसा सृष्टि बनाने का सामर्थ्य हो मगर ब्रह्मज्ञानी गुरु की कृपा के बिना आदमी संसार सागर से नहीं तर सकता । संसार में कुछ भी मिल गया तो आखिर क्या? आँख बन्द होते ही सब गायब । बढ़िया से बढ़िया पति मिल गया तो क्या? सुख ही तो तुमसे लेगा । बूढी होओगी तब देखेगा भी नहीं । सुन्दर पत्नी मिल गयी तो तुम से सुख चाहेगी । तुम बूढे हो गये तो थूक देगी । बेटे मिल गये तो पैसे चाहेंगे तुमसे । बेटा तुम्हारा वारिस हो जाता है । पत्नी तुम्हारे शरीर से सुख की चाह करती है । पति तुम्हारे शरीर का मालिक होना चाहता है । परन्तु तुम्हारा कल्याण करने वाला कौन होता है? नेता तो तुम्हारे वोट का भागी बनना चाहता है । जनता तुमसे सहुलियतें माँगती है । यह सब एक-दूसरे से स्वार्थ से ही जुडे हैं । भगवान और भगवान को प्राप्त महापुरुष ही तुम्हारा चित्त चाहेंगे । असली हित तो वे ही कर सकते हैं । दूसरे कर भी नहीं सकते । भोजन-छाजन, नौकरी-प्रमोशन की थोड़ी सहूलियत कर सकते हैं । शरीर का हित तो भगवान और सदगुरु ही कर सकते हैं । दूसरे के बस की बात नहीं । तुम्हारा सच्चा हित अगर कोई करता है तो वह गुरु ही है । माँ अगर आत्म-साक्षात्कार करा देती है तो माँ गुरु है । अगर माँ या बाप ब्रह्मज्ञानी हैं तो वे तुम्हे आत्म-साक्षात्कार करा सकते हैं ।

शरीर की शुद्धि तो आपको कोई भी दे देगा परन्तु आपकी शुद्धि का क्या?

एक कर्म होता है अपने लिए, दूसरा होता है शरीर के लिए । शरीर के लिए तो ज़िन्दगी भर करते हैं, अपने लिए कब करोगे? और शरीर तो यहीं धरा रह जायेगा यह बिल्कुल पक्की बात है । अपने लिए कुछ नहीं किया तो शरीर के लिए कर-कर के क्या निष्कर्ष निकाला? कार के लिए तो बहुत कुछ किया मगर इन्जिन के लिए नहीं किया तो कार कितने दिन चलेगी? शरीर के लिए सब किया मगर अपने लिये कुछ नहीं किया तो तुम तो आखिर अशुभ योनियों में घसीटे जाओगे । प्रेत योनि में, वृक्ष के शरीर में, कोई अप्सरा के शरीर में जाओगे, वहाँ देवता लोग तुम्हे नोचेंगे । कहीं भी जाओ, सब एक-दूसरे को नोचते ही हैं । स्वतन्त्र आत्म-साक्षात्कार जब तक नहीं होता तब तक धोखा ही धोखा है । अतः तुम्हारा कीमती जीवन, कीमती समय, कीमती से कीमती आत्मा-परमात्मा को जानने के लिए लगाओ और सदा के लिए सुखी हो जाओ.... तनाव रहित, भयरहित, शोक रहित, जन्म रहित, मृत्यु रहित अमर आत्मपद पाओ ।

उठ जाग मुसाफिर ! भोर भई ।
अब रैन कहाँ जो सोवत है ।।
जो सोवत है सो खोवत है ।
जो जागत है सो पावत है ।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूज्य बापू का ज्योतिर्मय सन्देश

निश्चिन्तता, निर्भीकता और प्रसन्नता से जीवन का सर्वांगीण विकास होगा । अतः उन्हें बढ़ाते जाओ । ईश्वर और संतों पर श्रद्धा-प्रीति रखने से निश्चिन्तता, निर्भीकता, प्रसन्नता अवश्य बढ़ती है ।

आत्मिक ऐश्वर्य, माधुर्य और पूर्ण प्रेम....। निष्कामता और एकाग्रता से आत्मिक ऐश्वर्य बढ़ता है । आत्मिक ऐश्वर्य से, सर्वात्मभाव से शुद्ध प्रेम की अभिव्यक्ति होती है । आप सबके जीवन में इसके लिए पुरुषार्थ हो और दिव्य सामर्थ्य प्रकट हो....।

थके, हारे, निराशावादी को सूर्य भले पुराना दिखे लेकिन आशावादी, उत्साही, प्रसन्नचित्त समझदार को तो पुराणपुरुषोत्तम सूर्य नित्य नया भासता है । आपका हर पल नित्य नये आनन्द और चमकता दमकता व्यतीत हो ।

आपका जीवन सफलता, उत्साह, आरोग्यता और आनन्द के विचार से सदैव चमकता दमकता रहे... आप विघ्न-बाधाओं के सिर पर नृत्य करते हुए आत्म-नारायण में निरन्तर आनन्द पाते रहें यह शुभ कामना....

नूतन वर्ष के मंगल प्रभात में जीवन को तेजस्वी बनाने का संकल्प करें । ईश्वर और संतों के मंगलमय आशीर्वाद आपके साथ हैं ।

दीप-प्राकट्य के साथ साथ आपकी आन्तर ज्योत का भी प्राकट्य हो ।

ज्योत से ज्योत जगाओ सदगुरु !
ज्योत से ज्योत जगाओ.....
मेरा अन्तर तिमिर मिटाओ सदगुरु !
ज्योत से ज्योत जगाओ.....

संसार की लहरियाँ तो बदलती जाएँगी, इसलिए हे मित्र ! हे मेरे भैया ! हे वीर पुरुष ! रोते, चीखते, सिसकते क्या जीना? मुस्कराते रहो.... हरि गीत गाते रहो.... हरि रस पाते रहो... यही शुभ कामना । आज से आपके नूतन वर्ष का प्रारम्भ.....

दुर्बल एवं हल्के विचारों से आपने बहुत-बहुत सहन किया है । अब इसका अन्त कर दो । दीपावली के दीपक के साथ साहस एवं सज्जनता को प्रकटाओ । जय हो ! शाबाश वीर ! शाबाश!

हे मानव ! अभी तुम चाहो तो जीवन का सूर्य डूब जाये उससे पहले सूर्यों के सूर्य, देवों के देव आत्मदेव का अनुभव करके मुक्त हो सकते हो । जीवनदाता में स्थिर हो सकते हो । सोहं के संगीत का गुँजन कर दो । फिर तो सदा दीवाली है ।

हम भारत वासी सचमुच भाग्यशाली हैं । भिन्न-भिन्न भगवानों की, देवी-देवताओं की उपासना-अर्चना से हमारे बहुआयामी मन को आन्तरिक माधुर्य मिल पाता है, जो तथाकथित धनाढ्य देशों में मिलना संभव नहीं है । भिन्नता में अभिन्न आत्मा-परमात्मा एक ही है ।

संयम और सदाचार के साथ संस्कृति के प्रचार में लगकर भारतभूमि की सेवा करो ।

कदम अपने आगे बढ़ाता चला जा....

दिलों के दिये जगमगाता चला जा....

भय, चिन्ता एवं बेचैनी से ऊपर उठो । आपकी ज्ञान ज्योति जगमगा उठेगी ।

सदा साहसी बनो । धैर्य न छोड़ो । हजार बार असफल होने पर भी ईश्वर के मार्ग पर एक कदम और रखो ।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ